[2020] 3 उम. नि. प. 82

मल्लूरू मलप्पा (मृत) मार्फत विधिक प्रतिनिधिगण

बनाम

कुरूवतप्पा और अन्य

[2020 की सिविल अपील सं. 1485]

12 फरवरी, 2020

न्यायमूर्ति एस. अब्दुल नजीर और न्यायमूर्ति संजय खन्ना

संविधान, 1950 – अनुच्छेद 133 [सपठित सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 की धारा 96 और सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 का आदेश XLI का नियम 31 तथा भारतीय परिसीमा अधिनियम, 1963 की धारा 54] – अपील – अधीनस्थ न्यायालय के निर्णयों के विरुद्ध उच्च न्यायालय में अपील – उच्च न्यायालय द्वारा अधीनस्थ न्यायालय के निर्णय को उलटा जाना – उच्च न्यायालय द्वारा अधीनस्थ न्यायालय के निर्णयों को उलटते समय, अधीनस्थ न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत साक्ष्यों और अभिलेखों का पुन: मूल्यांकन और पुन: परीक्षा नहीं किया जाना – चुनौती – यदि अधीनस्थ न्यायालय द्वारा पारित किसी निर्णय के विरुद्ध उच्च न्यायालय में अपील फाइल की जाती है तो यदि उच्च न्यायालय द्वारा अधीनस्थ न्यायालय द्वारा पारित निर्णयों को उलटा जाता है तो विधि में यह अपेक्षित है कि वह निर्णय को उलटते समय, अधीनस्थ न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत सभी साक्ष्यों और अभिलेखों का पुन: मूल्यांकन और पुन: परीक्षा करें और सकारण निर्णय पारित करे । यदि उच्च न्यायालय द्वारा ऐसा नहीं किया जाता है तो उसके द्वारा पारित निर्णय अविधिमान्य होंगे और विधि में कायम रखे जाने योग्य नहीं होंगे और अभिखंडित किए जाने योग्य होंगे ।

वर्तमान मामले में, वादी ने उपर्युक्त वाद, प्रत्यर्थियों/प्रतिवादियों के विरुद्ध तारीख 30 मार्च, 2000 के विक्रय करार का विनिर्दिष्ट पालन के लिए फाइल की थी । करार में यह उपबंधित था कि विक्रय का निष्पादन, प्रतिवादियों द्वारा कतिपय बाध्यताओं को पूरा करने के

अध्यधीन करार की तारीख से 3 वर्ष के भीतर किया जाना था । प्रतिवादी सं. 1 ने लिखित कथन फाइल किया और अन्य प्रतिवादियों ने अपने लिखित कथन के रूप में उसी को अंगीकार करते हुए, एक ज्ञापन फाइल किया । प्रतिवादी सं. 1 ने वादी के पक्ष में विक्रय करार के निष्पादन को स्वीकार किया था । तथापि, प्रतिवादी ने यह अभिवाक् किया कि वाद, परिसीमा अवधि को वर्जित था । यह भी दलील थी कि वादी, संविदा के अपने भाग का पालन करने के लिए तैयार और रजामंद नहीं था । वादी ने स्वयं की अभि. सा. 1 के रूप में परीक्षा की और प्रदर्श पी-1, पी-1(क) से (ग) तक उसके साक्ष्य को चिह्नित किया था । प्रतिवादी सं. 1 ने प्रतिवादी साक्षी 1 के रूप में परीक्षा की थी और तीन अन्य साक्षियों की प्रतिवादी साक्षी 2 से 4 के रूप में परीक्षा हुई थी । अभिलेख पर के साक्ष्यों का मूल्यांकन करने के पश्चात्, विचारण न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया कि वाद, परिसीमा अवधि द्वारा वर्जित था । यह भी अभिनिर्धारित किया था कि वादी, संविदा के अपने भाग का पालन करने के लिए तैयार और रजामंद नहीं था । तद्नुसार, वाद खारिज कर दिया गया था । उपर्युक्त उल्लिखित रूप से, उच्च न्यायालय ने विचारण न्यायालय की उक्त डिक्री की पुष्टि कर दी है । इससे व्यथित होकर वर्तमान अपील फाइल की गई । न्यायालय द्वारा अपील भागत: मंजूर करते हुए,

अभिनिर्धारित – सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 की धारा 96, प्राधिकृत न्यायालय की मूल अधिकारिता का प्रयोग करते हुए, ऐसे न्यायालयों के विनिश्चयों से अपीलों की सुनवाई करने के लिए किसी न्यायालय द्वारा पारित डिक्री से अपील फाइल करने के लिए उपबंध करता है । वर्तमान मामले में, उच्च न्यायालय के समक्ष विचारण न्यायालय द्वारा पारित डिक्री से अपील लंबित है । अभिव्यक्ति 'अपील' को सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 में परिभाषित नहीं किया गया है । ब्लैक की लॉ डिक्शनरी (सातवां संस्करण) अपील को 'उच्चतर प्राधिकारी के समक्ष इसे लाते हुए, पुन: विचार करके विनिश्चय करने की प्रक्रिया' के रूप में परिभाषित किया गया है । यह अधीनस्थ न्यायालयों के विनिश्चय का उच्चतर न्यायालय द्वारा विनिश्चय की न्यायिक परीक्षा है जिसके द्वारा

अपील के अधीन आदेश में संभाव्य किसी त्रुटि में सुधार करना है । विधि, अपील करने के उपचार का उपबंध करता है, इस मान्यता के कारण कि न्यायिक निकायों से भी त्रुटि कारित हो सकती है । यह विधि की सुस्थिर प्रतिपादना है कि एक अपील, मूल न्यायालय की कार्यवाहियों के निरंतरता में होती है । साधारण तौर पर, अपील अधिकारिता में विधि के साथ ही तथ्यों पर पुन: सुनवाई करने का अधिकार अंतर्वलित होता है और इसका व्यथित व्यक्ति द्वारा अवलंब लिया जाता है । प्रथम अपील, अपीलार्थी का मूल्यवान अधिकार होता है और इसमें विचारण न्यायालय द्वारा विनिश्चित सभी तथ्य और विधि के प्रश्नों पर पुन: विचार के लिए खुला होता है । इसलिए, प्रथम अपील न्यायालय से कारणों सहित सभी विवाद्यकों पर विचार करने और विनिश्चय करने की अपेक्षा होती है । प्रथम अपील न्यायालय को विधि के साथ ही तथ्य के सभी विवाद्यकों पर विचार करने और पक्षकारों द्वारा प्रस्तुत साक्ष्यों, मौखिक के साथ ही दस्तावेजी साक्ष्यों पर विचार करने के पश्चात् ही अपने निष्कर्ष अभिलिखित करना चाहिए । प्रथम अपील न्यायालय के निर्णय में विवेक का सचेतन लागू होना प्रकट होना चाहिए और सभी विवाद्यकों और दलीलों पर कारणों द्वारा समर्थित निष्कर्ष अभिलिखित होना चाहिए । सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 की धारा 96 के अधीन प्रथम अपील, धारा 100 के अधीन द्वितीय अपील से पूर्णतया भिन्न है । धारा 100 अभिव्यक्तत: द्वितीय अपील को वर्जित करता है जब तक कि मामले में विधि का प्रश्न अंतर्वलित नहीं है और इस प्रकार अंतर्वलित विधि का प्रश्न, सारवान् प्रकृति का होना चाहिए । सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 का आदेश XLI का नियम 31, मामले का विनिश्चय करने के लिए अपील न्यायालय के लिए मार्गदर्शकों का उपबंध करता है । यह स्पष्ट होता है कि प्रथम अपील न्यायालय का निर्णय, अवधार्य प्रश्नों, उन पर विनिश्चय अभिलिखित करने और उनके लिए स्वयं अपने कारण देने पर आधारित होता है । यद्यपि, जब प्रथम अपील न्यायालय द्वारा विचारण न्यायालय के निर्णय की अभिपुष्टि की जाती है तो आदेश 41 के नियम 31 की अपेक्षाओं का अनुपालन करना अपेक्षित होता है और इन अपेक्षाओं के अननुपालन करने से प्रथम अपील न्यायालय के निर्णय में त्रुटि हो सकती है । निस्संदेह, जब अपील न्यायालय साक्ष्यों के आधार पर विचारण न्यायालय के मतों से सहमत

होता है तो विचारण न्यायालय के समक्ष दिए गए साक्ष्यों का पुन: कथन करने या उसके द्वारा दिए गए कारणों को पुन: दोहराने की आवश्यकता नहीं होती है । विचारण न्यायालय द्वारा दिए गए कारणों के साथ साधारण करार की अभिव्यक्ति, साधारणतया पर्याप्त होती है । उपर्युक्त सिद्धांतों को ध्यान में रखते हुए, हम वर्तमान मामले की परीक्षा करते हैं । जैसा कि उपर्युक्त कथित है, वादी द्वारा संविदा के अपने भाग का पालन करने को तैयार और रजामंद होने से संबंधित विवाद्यक और परिसीमा से संबंधित विवाद्यक, वादी के विरुद्ध अभिनिर्धारित किए गए थे और तद्नुसार, वाद खारिज कर दिया गया था । उच्च न्यायालय के समक्ष अपील में, दोनों विधि और तथ्य के प्रश्न विवादित थे । उच्च न्यायालय ने इन पहलुओं में से किसी की भी परीक्षा किए बिना एक रहस्मय आदेश द्वारा अपील खारिज कर दिया है । निचले न्यायालय के समक्ष पक्षकारों द्वारा प्रस्तुत साक्ष्य की न तो पुन: विवेचना की गई न ही कोई सकारण आदेश पारित किया गया है । उच्च न्यायालय, अपील का विनिश्चय करते समय सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 के आदेश XLI के नियम 31 के उपबंधों का अनुसरण करने में असफल रहा है । श्री भट्ट ने यह तर्क दिया है कि वाद, परिसीमा अधिनियम, 1963 की धारा 54 के अधीन परिसीमा अवधि के भीतर फाइल किया गया था । इस प्रश्न की भी, इसके समुचित परिप्रेक्ष्य में परीक्षा नहीं की गई है । परिणामत:, अपील सफल होती है और तद्नुसार, भागत: मंजूर की जाती है । उच्च न्यायालय द्वारा 2006 की आर.एफ.ए. सं. 1731 में पारित तारीख 9 फरवरी, 2012 के निर्णय और डिक्री को अपास्त किया जाता है और मामले को विधि के अनुसरण में नए सिर से निपटारा करने के लिए उच्च न्यायालय के पास वापस भेजा जाता है । (पैरा 11, 14, 15, 16, 19, 20 और 21)

निर्दिष्ट निर्णय

		पैरा
[2015]	(2015) 11 एस. सी. सी. 269 : **शशिधर और अन्य** बनाम **अश्विनी उमा मैथड और एक अन्य** ;	18

[2015] (2015) 1 एस. सी. सी. 391 :
विनोद कुमार बनाम **गंगाधर** ; 17

[2011] (2011) 15 एस. सी. सी. 476 :
बी. एम. नारायण गौड़ा बनाम **संतम्मा (मृत) मार्फत विधिक प्रतिनिधिगण और एक अन्य** ; 14

[2005] (2005) 10 एस. सी. सी. 243 :
एच. के. एन. स्वामी बनाम
इरशाद वशिष्ट (मृत) मार्फत विधिक प्रतिनिधिगण ; 14

[2001] (2001) 4 एस. सी. सी. 756 :
मधुकर और अन्य बनाम **सांगराम और अन्य** ; 14

[2000] (2000) 3 एस. सी. सी. 179 :
संतोष हजारी बनाम **पुरुषोत्तम तिवारी (मृत) मार्फत विधिक प्रतिनिधिगण** ; 14

[1980] (1980) 4 एस. सी. सी. 259 :
मैसर्स श्री राजलक्ष्मी डाईंग वर्क्स बनाम
रंगास्वामी चेट्टियार ; 14

[1969] (1969) 2 एस. सी. सी. 74 :
शंकर राम चंद्र अभयांकर बनाम
कृष्णाजी दत्राये बापत ; 13

[1963] ए. आई. आर. 1963 एस. सी. 698 :
हरि शंकर बनाम **राव गिरधारी लाल चौधरी** । 12

अपीली (सिविल) अधिकारिता : 2020 की सिविल अपील सं. 1485.

संविधान, 1950 के अनुच्छेद 133 के अधीन अपील ।

अपीलार्थियों की ओर से श्री एस. एन. भट्ट

प्रत्यर्थियों की ओर से कोई नहीं

न्यायालय का निर्णय न्यायमूर्ति एस. अब्दुल नजीर ने दिया ।

न्या. नजीर – विलंब माफ किया गया । इजाजत दी गई ।

2. अपीलार्थी ने इस अपील में, कर्नाटक उच्च न्यायालय, बंगलौर द्वारा 2006 की आर.एफ.ए. सं. 1731 में पारित तारीख 9 फरवरी, 2012 के निर्णय और डिक्री को चुनौती दी है जिसके द्वारा उच्च न्यायालय ने विचारण न्यायालय द्वारा 2005 की मूल वाद सं. 32 में पारित तारीख 9 जून, 2006 के निर्णय और डिक्री की पुष्टि कर दी थी ।

3. वादी ने उपर्युक्त वाद, प्रत्यर्थियों/प्रतिवादियों के विरुद्ध तारीख 30 मार्च, 2000 के विक्रय करार का विनिर्दिष्ट पालन के लिए फाइल की थी । करार में यह उपबंधित था कि विक्रय का निष्पादन, प्रतिवादियों द्वारा कतिपय बाध्यताओं को पूरा करने के अध्यधीन करार की तारीख से 3 वर्ष के भीतर किया जाना था ।

4. प्रतिवादी सं. 1 ने लिखित कथन फाइल किया और अन्य प्रतिवादियों ने अपने लिखित कथन के रूप में उसी को अंगीकार करते हुए, एक ज्ञापन फाइल किया । प्रतिवादी सं. 1 ने वादी के पक्ष में विक्रय करार के निष्पादन को स्वीकार किया था । तथापि, प्रतिवादी ने यह अभिवाक् किया कि वाद, परिसीमा अवधि को वर्जित था । यह भी दलील थी कि वादी, संविदा के अपने भाग का पालन करने के लिए तैयार और रजामंद नहीं था ।

5. पक्षकारों के विरोधी अभिवचनों के आधार पर, विचारण न्यायालय ने निम्नलिखित विवाद्यक विरचित किया था :–

> "1. क्या वादी ने यह साबित कर दिया है कि प्रतिवादी सं. 1 और 2 उनके पिता ने अग्रिम धन के रूप में 1,50,000/- रुपए प्राप्त करने के पश्चात् वादी के पक्ष में 2,00,000/- रुपए के प्रतिफल के एवज में तारीख 30 मार्च, 2000 को एक विक्रय करार निष्पादित किया है ?
>
> 2. क्या वादी ने यह साबित कर दिया है कि वह संविदा के अपने भाग का पालन करने के लिए हमेशा ही तैयार और रजामंद रहा है ?
>
> 3. क्या वादी का वाद, परिसीमा अवधि द्वारा वर्जित है ?

4. क्या आदेश या डिक्री पारित किया जाए ?"

6. वादी ने स्वयं की अभि. सा. 1 के रूप में परीक्षा की और प्रदर्श पी-1, पी-1(क) से (ग) तक उसके साक्ष्य को चिह्नित किया था । प्रतिवादी सं. 1 ने प्रतिवादी साक्षी 1 के रूप में परीक्षा की थी और तीन अन्य साक्षियों की प्रतिवादी साक्षी 2 से 4 के रूप में परीक्षा हुई थी । अभिलेख पर के साक्ष्यों का मूल्यांकन करने के पश्चात्, विचारण न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया कि वाद, परिसीमा अवधि द्वारा वर्जित था । यह भी अभिनिर्धारित किया था कि वादी, संविदा के अपने भाग का पालन करने के लिए तैयार और रजामंद नहीं था । तद्नुसार, वाद खारिज कर दिया गया था ।

7. उपर्युक्त उल्लिखित रूप से, उच्च न्यायालय ने विचारण न्यायालय की उक्त डिक्री की पुष्टि कर दी है ।

8. हमने, अपीलार्थी/वादी के विद्वान् काउंसेल श्री एस. एन. भट्ट को सुना । यद्यपि, प्रत्यर्थियों को नोटिस तामील की गई थी किन्तु उनकी ओर से कोई भी उपस्थित नहीं हुआ ।

9. विद्वान् काउंसेल श्री भट्ट ने 2 भागों में निवेदन किया है । प्रथमतः, उन्होंने यह निवेदन किया है कि उच्च न्यायालय ने अभिलेख पर के साक्ष्यों का पुनर्मूल्यांकन किए बिना एक रहस्यमय निर्णय पारित किया है । यह तर्क दिया गया कि सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 (संक्षेप में जिसे 'सीपीसी' कहा गया है) की धारा 96 के अधीन वादी द्वारा फाइल प्रथम अपील वाद की निरंतरता में थी और यह उच्च न्यायालय के पदधारी पर निर्भर था कि वह अभिलेख पर के संपूर्ण साक्ष्यों का परिशीलन करता । यह तर्क दिया गया कि उच्च न्यायालय एक अपीली न्यायालय के रूप में, अपील का विनिश्चय करते समय सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 के आदेश XLI के नियम 31 के अधीन उपबंधित मार्गदर्शकों का अनुसरण करने में असफल रहा है । द्वितीयतः, यह तर्क दिया गया कि विक्रय करार, तारीख 30 मार्च, 2000 का था, जिसमें विक्रय विलेख के निष्पादन को पूरा करने के लिए करार की तारीख से 3 वर्ष का समय उपबंधित था । वाद, तारीख 28 जनवरी, 2005 को फाइल

किया गया था जो अच्छी तरह से परिसीमा अवधि के भीतर था । परिसीमा अधिनियम, 1963 (जिसे संक्षेप में 'परिसीमा अधिनियम' कहा गया है) की अनुसूची के अनुच्छेद 54 के प्रतिनिर्देश करते हुए, यह निवेदन किया गया था कि जब संविदा का पालन करने के लिए तारीख नियत है तो वाद फाइल करने के लिए परिसीमा अवधि, संविदा का पालन करने के लिए नियत तारीख से 3 वर्ष है । यह भी तर्क दिया गया कि उच्च न्यायालय ने वादी द्वारा संविदा के अपने भाग का पालन करने के लिए तैयार और रजामंद होने के बारे में कोई निष्कर्ष नहीं निकाला है ।

10. हमने, न्यायालय के समक्ष विद्वान् काउंसेल के निवेदनों पर ध्यानपूर्वक विचार किया है और अभिलेख पर प्रस्तुत सामग्रियों का परिशीलन किया है ।

11. सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 की धारा 96, प्राधिकृत न्यायालय की मूल अधिकारिता का प्रयोग करते हुए, ऐसे न्यायालयों के विनिश्चयों से अपीलों की सुनवाई करने के लिए किसी न्यायालय द्वारा पारित डिक्री से अपील फाइल करने के लिए उपबंध करता है । वर्तमान मामले में, उच्च न्यायालय के समक्ष विचारण न्यायालय द्वारा पारित डिक्री से अपील लंबित है । अभिव्यक्ति 'अपील' को सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 में परिभाषित नहीं किया गया है । ब्लैक की लॉ डिक्शनरी (सातवां संस्करण) अपील को 'उच्चतर प्राधिकारी के समक्ष इसे लाते हुए, पुन: विचार करके विनिश्चय करने की प्रक्रिया' के रूप में परिभाषित किया गया है । यह अधीनस्थ न्यायालयों के विनिश्चय का उच्चतर न्यायालय द्वारा विनिश्चय की न्यायिक परीक्षा है जिसके द्वारा अपील के अधीन आदेश में संभाव्य किसी त्रुटि में सुधार करना है । विधि, अपील करने के उपचार का उपबंध करता है, इस मान्यता के कारण कि न्यायिक निकायों से भी त्रुटि कारित हो सकती है ।

12. **हरि शंकर** बनाम **राव गिरधारी लाल चौधरी**[1] वाले मामले में, यह अभिनिर्धारित किया गया था कि अपील करने का अधिकार विधि, के

---

[1] ए. आई. आर. 1963 एस. सी. 698.

साथ ही तथ्यों पर पुन: सुनवाई करने का अधिकार होता है जब तक कि संविधि, कुछ तरीकों से पुन: सुनवाई करने की परिसीमा में अपील के अधिकार को प्रदत्त करता है जैसा कि सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 के अधीन उद्भूत होने वाले द्वितीय अपील में किया गया है ।

13. **शंकर राम चंद्र अभयांकर** बनाम **कृष्णाजी दत्राये बापत**[1] वाले मामले में, निम्नलिखित अभिनिर्धारित किया गया था :-

> "5. ..... यह सुज्ञात है कि वर्क ऑफ स्टोरी ऑन कांस्टिट्यूशन (यूनाईटेड स्टेट्स), खंड 2, आर्टिकल 1761 में यह कथित है कि अपीली अधिकारिता के सृजन के आवश्यक तत्व यह है कि यह पहले से ही संस्थित हेतुकों में कार्यवाहियों का पुनरीक्षण करता है और उसे सही करता है तथा उन हेतुकों को सृजित नहीं करता है । अपीली अधिकारिता का प्रयोग विभिन्न प्ररूपों में किया जा सकता है और वस्तुत:, किसी भी प्ररूप में जिसमें विधान-मंडल विहित करता है । आर्टिकल 1772 के अनुसार, अपीली अधिकारिता का प्रयोग करने का प्राय: तरीका कम से कम उन मामलों में जो यूनाईटेड स्टेट्स में सुज्ञात है, रिट की त्रुटि द्वारा या एक अपील द्वारा या निम्नतर अधिकरणों से वाद को समाप्त करने की कुछ प्रक्रिया द्वारा । एक अपील, मूल रूप से हेतुकों को समाप्त करने की सिविल विधि की प्रक्रिया है जो संपूर्ण रूप से पुनर्विलोकन और पुनर्विचारण द्वारा तथ्य के साथ ही विधि के अध्यधीन होती है...।"

14. यह विधि की सुस्थिर प्रतिपादना है कि एक अपील, मूल न्यायालय की कार्यवाहियों के निरंतरता में होती है । साधारण तौर पर, अपील अधिकारिता में विधि के साथ ही तथ्यों पर पुन: सुनवाई करने का अधिकार अंतर्वलित होता है और इसका व्यथित व्यक्ति द्वारा अवलंब लिया जाता है । प्रथम अपील, अपीलार्थी का मूल्यवान अधिकार होता है और इसमें विचारण न्यायालय द्वारा विनिश्चित सभी तथ्य और विधि के प्रश्नों पर पुन: विचार के लिए खुला होता है । इसलिए, प्रथम अपील न्यायालय से कारणों सहित सभी विवाद्यकों पर विचार करने और

---

[1] (1969) 2 एस. सी. सी. 74.

विनिश्चय करने की अपेक्षा होती है । प्रथम अपील न्यायालय को विधि के साथ ही तथ्य के सभी विवाद्यकों पर विचार करने और पक्षकारों द्वारा प्रस्तुत साक्ष्यों, मौखिक के साथ ही दस्तावेजी साक्ष्यों पर विचार करने के पश्चात् ही अपने निष्कर्ष अभिलिखित करना चाहिए । प्रथम अपील न्यायालय के निर्णय में विवेक का सचेतन लागू होना प्रकट होना चाहिए और सभी विवाद्यकों और दलीलों पर कारणों द्वारा समर्थित निष्कर्ष अभिलिखित होना चाहिए [देखें : **संतोष हजारी** बनाम **पुरुषोत्तम तिवारी (मृत) मार्फत विधिक प्रतिनिधिगण**[1], **मधुकर और अन्य** बनाम **सांगराम और अन्य**[2], **बी. एम. नारायण गौड़ा** बनाम **संतम्मा (मृत) मार्फत विधिक प्रतिनिधिगण और एक अन्य**[3], **एच. के. एन. स्वामी** बनाम **इरशाद वशिष्ट (मृत) मार्फत विधिक प्रतिनिधिगण**[4] और **मैसर्स श्री राजलक्ष्मी डाईंग वर्क्स** बनाम **रंगास्वामी चेट्टियार**[5]] ।

15. सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 की धारा 96 के अधीन प्रथम अपील, धारा 100 के अधीन द्वितीय अपील से पूर्णतया भिन्न है । धारा 100 अभिव्यक्तत: द्वितीय अपील को वर्जित करता है जब तक कि मामले में विधि का प्रश्न अंतर्वलित नहीं है और इस प्रकार अंतर्वलित विधि का प्रश्न, सारवान् प्रकृति का होना चाहिए ।

16. सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 का आदेश XLI का नियम 31, मामले का विनिश्चय करने के लिए अपील न्यायालय के लिए मार्गदर्शकों का उपबंध करता है । वर्तमान संदर्भ के लिए, सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 का आदेश XLI का नियम 31 निम्नलिखित है :–

> "**निर्णय के अंतर्वस्तु, तारीख और हस्ताक्षर** – अपील न्यायालय का निर्णय लिखित होगा और उसमें –
>
> (क) अवधार्य प्रश्न,

---

[1] (2000) 3 एस. सी. सी. 179.

[2] (2001) 4 एस. सी. सी. 756.

[3] (2011) 15 एस. सी. सी. 476.

[4] (2005) 10 एस. सी. सी. 243.

[5] (1980) 4 एस. सी. सी. 259.

(ख) उन पर विनिश्चय,

(ग) विनिश्चय के लिए कारण, तथा

(घ) जहां वह डिक्री जिसकी अपील की गई है, उलट दी जाती है या उसमें फेरफार किया जाता है, वहां वह अनुतोष जिसका अपीलार्थी हकदार है, कथित होगा ।

और वह न्यायाधीश द्वारा या उसमें सहमत न्यायाधीशों द्वारा उस समय जब वह सुनाया जाए, हस्ताक्षरित और दिनांकित किया जाएगा ।"

17. **विनोद कुमार** बना **गंगाधर**[1] वाले मामले में, इस न्यायालय ने प्रथम अपील का निपटारा करते समय, विवेक में उद्भूत होने वाले सिद्धांतों को पुन: दोहराया है जो निम्नलिखित है :-

"15. पुन: बी. वी. नागेश **बनाम** एच. वी. श्रीनिवास मूर्ति [(2010) 13 एस. सी. सी. 530 = (2010) 4 एस. सी. सी. (सि.) 808] वाले मामले में, इस न्यायालय ने, इस न्यायालय के सभी पूर्ववर्ती निर्णयों का उल्लेख करते हुए, इन शब्दों में पूर्वोक्त उल्लिखित सिद्धांत को पुन: दोहराया है - (एस. सी. सी. पृष्ठ 530-31, पैरा 3-5) -

"3. अपील न्यायालय/उच्च न्यायालय द्वारा किस प्रकार नियमित प्रथम अपील का निपटाना करना होता है, इस न्यायालय द्वारा कतिपय विनिश्चयों में विचार किया गया है । सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 का आदेश 41, मूल डिक्रियों से अपीलों के बारे में विचार करता है । कतिपय नियमों के साथ, नियम 41 में यह समादेश है कि अपील न्यायालय के निर्णय में -

(क) अवधार्य प्रश्न,

(ख) उन पर विनिश्चय,

---

[1] (2015) 1 एस. सी. सी. 391.

(ग) विनिश्चय के लिए कारण, तथा

(घ) जहां वह डिक्री जिसकी अपील की गई है, उलट दी जाती है या उसमें फेरफार किया जाता है, वहां वह अनुतोष जिसका अपीलार्थी हकदार है, कथित होगा ।

4. अपील न्यायालय के पास विचारण न्यायालय के निष्कर्षों को उलटने या अभिपुष्टि करने की अधिकारिता होती है । प्रथम अपील, पक्षकारों का एक मूल्यवान अधिकार होता है और जब तक विधि द्वारा निर्बंधित नहीं किया जाता है तब तक संपूर्ण मामला तथ्य और विधि के प्रश्नों पर पुन: सुनवाई के लिए खुला होता है । इसलिए, अपील न्यायालय के निर्णय में विवेक लागू करने की सचेतना प्रदर्शित होनी चाहिए और अभिलिखित निष्कर्ष, अपील न्यायालय के विनिश्चय के लिए पक्षकारों द्वारा दी गई दलीलों और सामग्रियों के साथ उद्भूत होने वाले सभी विवाद्यकों पर कारणों द्वारा समर्थित होना चाहिए । प्रथम अपील के न्यायालय के रूप में कार्य करते हुए, उच्च न्यायालय का यह कर्तव्य होता है कि वह अपना निष्कर्ष अभिलिखित करने के पूर्व सभी विवाद्यकों और पक्षकारों द्वारा प्रस्तुत साक्ष्यों पर विचार करे । प्रथम अपील एक मूल्यवान अधिकार होता है और पक्षकारों को दोनों विधि और तथ्यों के प्रश्नों पर सुने जाने का अधिकार होता है और प्रथम अपील में निर्णय विधि और तथ्यों के सभी प्रश्नों और सभी विवाद्यकों के प्रतिप्रेषित होना चाहिए और निष्कर्षों के समर्थन में, कारण देते हुए, इसका विनिश्चय करना चाहिए । {देखें : संतोष हजारी **बनाम** पुरुषोत्तम तिवारी [(2001) 3 एस. सी. सी. 179 = [2001] 1 एस. सी. आर. 948, एस. सी. सी. पृष्ठ 188, पैरा 15 और मधुकर **बनाम** सांगराम [(2001) 4 एस. सी. सी. 756], एस. सी. सी. पृष्ठ 758, पैरा 5}"

18. **शशिधर और अन्य** बना **अश्विनी उमा मैथड और एक अन्य**[1] वाले मामले में, यह अभिनिर्धारित किया गया था कि :-

> "21. इसलिए, प्रथम अपील होने के नाते उच्च न्यायालय का यह कर्तव्य था कि वह उपर्युक्त उल्लिखित संहिता, 1908 की धारा 96 के साथ पठित आदेश 41 के नियम 31 के अधीन विहित क्षेत्र और प्रदत्त शक्तियों को ध्यान में रखते हुए, प्रथम अपील का विनिश्चय करे । दुर्भाग्य से ऐसा नहीं किया गया था, तद्द्वारा उन अपीलार्थियों को प्रतिकूलता कारित हुई जिन्हें विधि और तथ्यों पर प्रथम अपील का अभियोजन करने का मूल्यवान अधिकार था जो प्रतिकूल रूप से प्रभावित हुआ जिससे विधि के अनुसरण में, अपील की सुनवाई करने के अधिकार से वे वंचित हो गए ।"

19. उपर्युक्त उपबंधों और इस न्यायालय के विनिश्चयों से, यह स्पष्ट होता है कि प्रथम अपील न्यायालय का निर्णय, अवधार्य प्रश्नों, उन पर विनिश्चय अभिलिखित करने और उनके लिए स्वयं अपने कारण देने पर आधारित होता है । यद्यपि, जब प्रथम अपील न्यायालय द्वारा विचारण न्यायालय के निर्णय की अभिपुष्टि की जाती है तो आदेश 41 के नियम 31 की अपेक्षाओं का अनुपालन करना अपेक्षित होता है और इन अपेक्षाओं के अननुपालन करने से प्रथम अपील न्यायालय के निर्णय में त्रुटि हो सकती है । निस्संदेह, जब अपील न्यायालय साक्ष्यों के आधार पर विचारण न्यायालय के मतों से सहमत होता है तो विचारण न्यायालय के समक्ष दिए गए साक्ष्यों का पुन: कथन करने या उसके द्वारा दिए गए कारणों को पुन: दोहराने की आवश्यकता नहीं होती है । विचारण न्यायालय द्वारा दिए गए कारणों के साथ साधारण करार की अभिव्यक्ति, साधारणतया पर्याप्त होती है ।

20. उपर्युक्त सिद्धांतों को ध्यान में रखते हुए, हम वर्तमान मामले की परीक्षा करते हैं । जैसा कि उपर्युक्त कथित है, वादी द्वारा संविदा के अपने भाग का पालन करने को तैयार और रजांमद होने से संबंधित

---

[1] (2015) 11 एस. सी. सी. 269.

विवाद्यक और परिसीमा से संबंधित विवाद्यक, वादी के विरुद्ध अभिनिर्धारित किए गए थे और तद्नुसार, वाद खारिज कर दिया गया था । उच्च न्यायालय के समक्ष अपील में, दोनों विधि और तथ्य के प्रश्न विवादित थे । उच्च न्यायालय ने इन पहलुओं में से किसी की भी परीक्षा किए बिना एक रहस्मय आदेश द्वारा अपील खारिज कर दिया है । निचले न्यायालय के समक्ष पक्षकारों द्वारा प्रस्तुत साक्ष्य की न तो पुन: विवेचना की गई न ही कोई सकारण आदेश पारित किया गया है । उच्च न्यायालय, अपील का विनिश्चय करते समय सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 के आदेश XLI के नियम 31 के उपबंधों का अनुसरण करने में असफल रहा है । श्री भट्ट ने यह तर्क दिया है कि वाद, परिसीमा अधिनियम, 1963 की धारा 54 के अधीन परिसीमा अवधि के भीतर फाइल किया गया था । इस प्रश्न की भी, इसके समुचित परिप्रेक्ष्य में परीक्षा नहीं की गई है ।

21. परिणामत:, अपील सफल होती है और तद्नुसार, भागत: मंजूर की जाती है । उच्च न्यायालय द्वारा 2006 की आर.एफ.ए. सं. 1731 में पारित तारीख 9 फरवरी, 2012 के निर्णय और डिक्री को अपास्त किया जाता है और मामले को विधि के अनुसरण में नए सिर से निपटारा करने के लिए उच्च न्यायालय के पास वापस भेजा जाता है ।

22. पक्षकारों की सभी दलीलें खुली रहेंगी । खर्चे का कोई आदेश नहीं किया जाता है ।

अपील भागत: मंजूर की गई ।

क.